प्रस्तावना :-

जनजातीय समुदायों का जीवन वनों और वन्य जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। परिस्थितियां और आर्थिक दृष्टि से जनजातियों को वन और वन्य जीवन से अलग नही किया जा सकता हैं। नि:संदेह वन पर्यावरण के अविभाज्य अंग है और एक दुसरे पर निर्भर रहना ही इनकी प्रकृति है। जंगलों से जनजातियों को कुछ आवश्यक वस्तुओं जैसे-कंद-मूल, दाना-पानी, जड़ी-बूटियां, शहद घर बनाने का सामान और कुछ जीवन उपयोगी वस्तुएं मिलती है। जनजातियों की परम्परागत अर्थव्यवस्था मुख्यता: जंगलो पर निर्भर है, उनका धर्म,जादू और उनकी अस्थाएं भी जंगलो से जुड़ी हुई है। पिछले तीन दशको से सरकार द्वारा अनेक राष्ट्रीय वन नीतियों के निर्माण से जनजातीय समाज को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। वन प्रशासन में भी बहुत परिवर्तन हुए। जैसे-वन-संरक्षक, वन-पालक और वन अधिकारी जैसे-प्रशासनिक अधिकारियों की एक लम्बी-चौड़ी फोज स्थानीय लोगो पर लाद दी गयी है। इन अधिकारियों की सूझ- बुझ से राजस्थान और महाराष्ट्र के कुछ इलाके, जहाँ पेड़ न के बराबर हैं, वन-क्षेत्र घोषित कर दिए गये है। झारखण्ड, छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश और उड़ीसा के वे हिस्से भी वन क्षेत्र में शामिल हो गए है, जहाँ वे जनजातियाँ हमेशा से खेती करती आ रही थीं। आज भारत में कुल वन क्षेत्र कितना हैं यह कहना मुश्किल हो गया है। 1971 में केन्द्रीय वन आयोग के अनुसार भारत में कुल वन क्षेत्र 747.4 लाख हेक्टेयर था। लेकिन कृषि संगणना के अनुसार कुल वन-क्षेत्र 660 लाख हेक्टेयर है। वन के भीतरी इलाको में आज विकास का एक ही अर्थ रह गया है, पक्की सड़के बनाना। जिससे वनों का विनाश और भी आसान हो गया है। जनता के हित या विकास के नाम पर वनों की अन्धाधुध कटाई, वन विभाग के अधिकारियों और व्यावसायियों तथा ठेकेदारो की सांठ- गांठ से चल रहे भ्रष्टाचार का नतीजा अंततः वन जनजातियों, गैर-जनजातियो को ही सहना पड़ता है। अपने परम्परागत अधिकारों का छीन लिया जाना, भ्रष्ट वन अधिकारियों के हाथों में लगातार मुसीबतें, अत्याचार, अपमान सहना, ठेकेदारों का क्रूर व्यवहार और बर्बर शोषण , वन से मिलने

वाली आजीविका खो जाना और वन के अन्दर गाँव को उजाड़ा जाना, यह सब आज जनजातियों की जिंदगी का हिस्सा बन गया है। इनका सुख चैन छिन गया हैं। जनजातियों की इस बर्बादी के साथ वन भी बर्बाद हुए। अपनी ही बनाई नीतियों से पैदा हुई समस्याओ को सम्भालने में लीन सरकार ने अब वनों के प्रबन्धन का और भी केन्द्रियकरण करने का फैसला किया। संविधान में 42वां संसोधन लोकसभा द्वारा पारित किया गया जिसके अनुसार वनों का नियन्त्रण राज्य सरकार से केंद्र ने अपने हाथों में ले लिया। वन संरक्षण अधिनियम 1980 से वनों पर नियंत्रण और भी बढ गया।

सरकार अपने नियन्त्रण के पक्ष में यह तर्क देती है कि जनजातियाँ वनों का विनाश कर रही हैं। क्या यह सत्य नही है कि सरकारी नीतियों और कानून के माध्यम से एक विशेष व्यवसायी वर्ग अन्धाधुन्ध कटाई करके अपने को लाभान्वित करते हुए वनों को बर्बाद कर रहा है।इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह शोध किया गया है जिसमें वन में रहने वाले लोगों एवं वन समितियों की वास्तविकता को ध्यान में रखकर एक समाजकार्यात्मक प्रयास किया जा सके ।[1]

जनजाति क्या है :

विश्व के अनेक भागों में रहने वाले उन समुदायों को 'जनजाति 'कहा जाने लगा, जो आर्थिक व सामाजिक दृष्टिकोण से तत्कालीन यूरोपीय समाजों की तुलना में पिछड़ें हुए है। भारत के लोग जनजाति या आदिवासी समूहों को एस. टी (Shudle Cast) कहते हैं। वास्तव में यह एक प्रशासनिक शब्दावली हैं जिसे 19वीं सदी में अंग्रेजी शासकों ने अमल में लाया। स्वतंत्र भारत के संविधान में वर्णित 'अनुसूचित जनजाति'

[1]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.पेज संख्या 190

काआधार वही है जिसे ब्रिटेन सरकार ने तैयार किया था। इस सूची में उन्हें सम्मलित किया गया जो हिन्दू वर्ण व्यवस्था के बाहर थे, साथ ही सदियों से उपेक्षित रहें।[2]

जनजातीय की परिभाषा :-

"कोई भी जनजाति परिवारों का एक ऐसा समूह है जिंनका एक सामान्य नाम है, जिनके सदस्य निश्चित भूभाग में निवास करतें हैं एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते है तथा विवाह, पेशा संबंधी कुछ निषेधों का पालन करतें हैं, जिन्होने एक आदान-प्रदान संबंधी तथा पारस्परिक कर्तव्य विषयक एक निश्चित व्यवस्था का विकास कर लिया है । साधारणता: जनजाति अंतर्विवाही नियमों का समर्थन करती है।'' **"डी.एन. मजूमदार"**

'जनजाति'विकास के आदिम अथवा बर्बर आचरण में लोगों का एक समूह है जों एक मुखिया की सत्ता स्वीकारते हों तथा साधारणत: अपना एक समान पूर्वज मानतें हों ।

"आक्सफोर्ड शब्दकोष"

सरलतम रूप में 'जनजाति 'ऐसी टोलियों का एक समूह है जिसका एक सान्निध्य वाले भूखंड अथवा भुखण्डों पर अधिकार हों ओर एकता की भावना , संस्कृति में गहन समानता , निरंतर सम्पर्क तथा कतिपय सामुदायिक हितों में समानता से उत्पन्न हुई हो

"रल्प लिंटन"

'जनजाति' समान संस्कृति वाली जनसंख्या का एक स्वतन्त्र राजनीतिक विभाजन है ।

"लूसी मेयर"

[2]श्रीवास्तव, ए.आर.एन.(2015). *जनजातीय भारत के साठ वर्ष* .भोपाल:मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी-1

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि जनजातीयकी परिभाषा में समाज विशेष की विशिष्टाताओं को प्रमुख स्थान देने की परम्परा प्रचलित है। इसमें सीमित क्षेत्र, भाषा, संस्कृति राजनीतिक एवं स्वायत्तता (जनजातीय समूह किसी दूसरे के अधीन),विशेष प्रकार की विश्वास पद्धति, पृथकता जैसे तत्व सम्मलित हैं।किसी स्थान विशेष के समुदाय के लिए कुछ विशेषताएं सटीक जान पड़ती हैं जिसे जनजाति की संज्ञा दी जाती है।[3]

अंग्रेजी प्रशासन का प्रारम्भिक स्वरूप :-

सदियों से जनजातियों ने अपना जीवन वनव्यतीत किया है, इनमें से कुछ ही जनजातियां ऐसी है जिंनका संपर्क हिन्दू जनजातियों से रहा हैं। हम ऐसा कह सकते है कि प्रत्येक छोटी-बड़ी जनजातियों अपना परंपरागत संगठन अवश्य होगा।मानवशास्त्रीय अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि कोई भी समाज एक लंबे समय तक अपना अस्तित्व तभी बनाएँ रख सकता है जब उसमें एक स्थायी आंतरिक व्यवस्था हों। पड़ोसी या बाहरी लोगो के साथ संपर्क पर भी जनजातीय व्यवस्था में कोई भी विशेष परिवर्तन नही हुआ, थोडी आबादी बढ़ने के कारण उनका क्षेत्रीय फैलाव बढ़ता गया। जनजातियाँ जो कि एक व्यापक क्षेत्र मे फैली हुई है (गोंड,भील,संथाल ,उरांव आदि) उन्हे अपने विस्तार के बारें में ज्यादा ज्ञान नही था प्रत्येक बड़ा या छोटा समूह यह जानता था कि उसके भू-भाग का फैलाव कहा तक है। सामाजिक व धार्मिक कारणवश जो भी झगड़ें होते उन्हे अपने परंपरागत तरीके से मुखिया ही सुलझाते थे।

यह सभी को ज्ञात है कि अंग्रेज़ प्रशासकों ने " अप्रत्यक्ष शासन नीति "(इनडाइरेक्ट रूल) द्वारा भारत जैसे विशाल क्षेत्र को एक संपर्क सूत्र मे बांध लिया जो कि पूर्व मे संभव नही हो सका था। वे यहाँ के जनजातीय समूहों से पूर्णतया अपरिचित थे। अफ्रीकी औपनिवेशिक क्षेत्रों में उनके प्रारम्भिक अनुभवों से उन्हे जनजातियों से " अलगाव"तथा " आंतरिक हस्तक्षेप" से दूर रहना ही उचित ठहराया किन्तु अवसर आते ही अंग्रेजों ने जनजातीय क्षेत्रों में दखल करना प्रारम्भ किया । ये अवसर 18वीं शताब्दी के बाद के वर्षों मे आया। बिहार और पश्चिमी बंगाल के जमीदारों के जनजातीय क्षेत्रों में अतिक्रमण के कारण

[3]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स पेज संख्या-11

राजमहल मे जनजातीय पहाड़ी-समुदायों ने जमकर इनके विरुद्ध षड्यंत्र करना प्रारम्भ किया। अंग्रेज़ प्रशासको की सैनिको ने जनजातियों को कुचलना आरम्भ किया। आरम्भ में उनकी हार हुई किन्तु तत्कालीन क्षेत्रीय कमिश्नर अगस्त क्लीवलैंड द्वारा अपनाई गई नीति कारगर सिद्ध हुई और शीघ्र आदिवासी विद्रोहियों के साथ समझौता हो गया। उपरोक्त समझौते ने सरकारी दस्तावेजों में 1796 वर्ष का रेगुलेशन न.1 कहा गया है। इसके अंतगर्त दक्षिणी बिहार के राजमहल क्षेत्र के विशेष प्रशासन को हटा दिया गया। स्थानीय मुखियो को विशेष दीवानी और फौजदारी के आधिकार दिये गए। जमींदारो से संबंध तोड़ दिया और जनजातियों तथा जनजातीय क्षेत्रों की गैर-जनजातियों को लगान रहित भूमि बांटी गई। जनजातीय क्षेत्रों मे अंग्रेज़ प्रशासन का पहली नीव पड़ीं।आने वाले वर्षों में शैने: शैने: अंग्रेजी सत्ता मजबूत होती गई और जनजातीय क्षेत्रों में उनका प्रभाव बढ़ने लगा ।[4]

जनजातीय विकास

भारत कें संविधान में विकास की अवधारणा में समाज के सभी निर्बल, महिलाएं बच्चे एवं वृद्धजनों के कल्याण कि बात काही गई है । हम ऐसा कह सकते हैं कि विकास कि धारणा एक क्षेत्र विशेष के समुदायों कि सम्पूर्ण आवश्यकताओं से संबन्धित है ।

जनजातीय विकास से आशय एक ऐसे सामाजिक प्रवर्ग के सदस्यों का वांछनीय दिशा में परिवर्तन लाने का प्रयास है जिन्हें हमारे देश में आदिवासी ,बनवासी अथवा एस.टी.(अनुसूचित जनजाति) जैसे नाम से जाना जाता है। वर्तमान में (जनसंख्या 2011) जनजतियों कि जनसंख्या लगभग 10 करोड़ 42 लाख है। (अनुसूचित जनजातियों नवीनतम जनसंख्या परिशिष्ट-11में दी गई है) अर्थात देश कि जनसंख्या के 9.60 प्रतिशत जनजातीय समूह वाले है। समूहो का सामाजिक, आर्थिक भौगोलिक परिवेश एक जैसा नहीं है।जनजातीय विकास का मुद्दा अन्य समूहों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील है क्योकि इनकी प्रगति का स्तर बहुत ही निम्न है ।[5]

---

[4]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स पेज संख्या-3

[5]श्रीवास्तव, प्रदीप एवं मुखर्जी, बी. एम.(1999).*भारत का जनजातीय जीवन*.बिलासपुर:प्रियंका पब्लिकेशन्स.

भारत में पर्यावरण संरक्षण का इतिहास बहुत पुराना है। हड़प्पा संस्कृति पर्यावरण से ओत –प्रोत थी, तो वैदिक संस्कृति पर्यावरण- संरक्षण हेतु पर्याय बनी रही। भारतीय मुनीषियों ने समूची प्रकृति ही क्या, सभी प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना।उर्जा के स्रोत सूर्य को देवता माना तथा उसको 'सूर्य देवो भव' कहकर पुकारा।भारतीय संस्कृति में जल को भी देवता माना गया है। सरिताओं को जीवनदायिनी कहा गया है, इसलिए प्राचीन संस्कृतियाँ सरिताओं के किनारें उपजी और पनपी। भारतीय संस्कृति में केला, पीपल , तुलसी , बरगद, आम आदि पेड़ पोधों की पूजा की जाती रही है । मध्यकालीन एवं मुगलकालीन भारत में भी पर्यावरण प्रेम बना रहा । अंगेजों ने भारत में अपने आर्थिक लाभ के कारण पर्यावरण को नष्ट करने का कार्य प्रारम्भ किया। विनाशकारी दोहन नीति के कारण पारिस्थितिकीय असंतुलन भारतीय पर्यावरण में ब्रिटिश काल में ही दिखने लगा था। स्वतंत्र भारत के लोगो में पश्चिमी प्रभाव , औद्योगीकरण तथा जनसंख्या विस्फोट के परिणामस्वरूप तृष्णा जाग गयी जिसने देश में विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों को जन्म दिया।19वीं शताब्दी में जंगलो, जंगली जानवरों व वस्तुओं, वनस्पति संपत्ति और भूमि, आर्द्रता, वर्षा और पर्यावरण से उसके अंतर्संबंधों के महत्व को पहचाना गया और यह निर्णय लिया गया कि सत्ताधिकारी देश के उन हिस्सोंतक भी फैलाया जाये जिनकी उस समय तक उपेक्षा की गयी थी। अंग्रेजो के शासन से पहले भारत में जनता जंगलो का इस्तेमाल मुख्यत: स्थानीय रीति रीवाजो के अनुसार होता था। 1855 में लार्ड डलहौजी , जो उस समय मध्य भारत का गवर्नर था, ने एक वन नीति घोषित की जिनके अंतगर्त यह कहा गया कि राज्य के वन-क्षेत्र में जो भी इमारती लकड़ी के पेड़ है वे राज्य सरकार के है और उन पर किसी व्यक्ति का कोई अधिकार या दावा नही है। इस नीति को अमल में लाने के लिए एक वन विभाग की स्थापना हुई जिसका सबसे बड़ा अफसर महानिरीक्षक , वन –विभाग बनाया गया। इस महानिरीक्षक का बुनयादी काम वन प्रसाधनो की रक्षा और उनका आर्थिक विदोहन करना था। इस प्रकार जंगल सम्बन्धी पूरी आजादी प्राप्त थी, तथाकथित सभ्य सरकार की दया का पात्र बना दिया गया। 90 के दशक से इस सोच में व्यापक बदलाव देखने को मिला। इस दौरान देश में कोई प्रगतिवादी कानून, जैसे पंचायत

अधिसूचना क्षेत्रों का विस्तार अधिनियम, सूचना का अधिकार , महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारेंटी योजना और वन अधिकार, अधिनियम बना।[6]

जनजातीय विकास की आवश्यकता:-

भारत के संविधान मे समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक व्यवस्था में आदर्श ढांचे की संकल्पना की गई है। समाज मे निर्बल वर्ग में सर्वाधिक निर्बल जनजातीयां सदियों से उपेक्षित रही हैं। अतएव उनकी स्थिति के अनुसार कार्यक्रम तय करना अनिवार्य समझा गया और इसे राष्ट्रीय कार्यक्रम की मान्यता दी गई है। संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश शासन के दौरान गठित कमिटियों के प्रतिवेदनों को ध्यान में रखते हुये जनजातियों के विशेष प्रावधान निश्चित किया है। देश की सम्पूर्ण जनजातियों के लिए केंद्र सरकार को उत्तरदायी माना गया है। केंद्र सरकार के नियमानुसार राज्य सरकार विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम चलाती है।[7]

वन अधिकार की आवश्यकता एवं महत्व :-

वन अधिकार अधिनियम 2006 कानून, वनों मे रहने वाले आदिवासियों को सही हक दिलाने के लिए बनाया गया है। अनुसूचित जनजाति के लोग व अन्य वनवासी सदियों से वनों मे रहते आए हैं, उन्होने हमेशा वनों को सहेज कर रखा है, उनकी रक्षा की है। वनों को बनाए रखने मे आदिवासियों का बड़ा योगदान है, उनके निवास को सही मान्यता नही मिलने से आदिवासियों के साथ घोर अन्याय हुआ है।आदिवासियों में वें जनजाती भी शामिल है, जिन्हे विकास के नाम पर मजबूरन अपने निवास दूसरी जगह बनाने पड़े थे। भूमि संबंधी असुरक्षा लंबे समय से चली आ रही है। इसे खत्म करने के लिए वन समिति अधिनियम 2006 एवं नियम 2008 बनाए गए हैं।

वन अधिकारों की मान्यता से संबंधित इस कानून के तहत देश के उन तमाम अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परम्परागत वनवासी समुदायों का जिनका जीवन व आजीविका परम्परागत रूप से वनों व वन भूमि

[6]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स पेज सं 190

[7]वर्मा,रूपचंद(2003).भारतीय जनजातियाँ,नयी दिल्ली:सुचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पेज सं.-84

पर निर्भर है, मगर ब्रिटिश काल से लेकर आजाद भारत की आज तक की सरकारों ने वनों व वन भूमि पर से उनके परम्परागत अधिकारों को छीन कर उनके साथ ऐतिहासिक अन्याय किया है। इस अधिनियम के तहत उनके परम्परागत अधिकार प्रदान किये जाएगें ताकि उनकी आजीविका व उनके जीवन की रक्षा की जा सकें।

इस कानून के तहत इस कार्य को अंजाम देने के लिए ग्रामों /गावों की सभा एक 'ग्राम वन अधिकार समिति' का गठन करेगी। उपखंड स्तर पर एक समिति होगी जिसका अध्यक्ष उपजिलाधिकारी स्तर का अधिकारी होगा। एक जिला स्तर की समिति होगी जिसका अध्यक्ष राज्य का मुख्य सचिव होगा। ग्राम स्तर की समिति के पास ग्रामवासीअपने पुर्खों के अधिकार की वन भूमि व वनों पर अपनेपरम्परागत अधिकारों की बहाली के लिए व्यक्तिगत/समोहिक दावे प्रपत्र व दस्तावेज़ जमा करेंगे।ग्राम वन अधिकार समिति इन दावों की जाँच कर इन पर विचार करेगी और फिर अपनी संस्तुति से साथ इसे उपखंड स्तरीय समिति के पास भेजेगी। जिला स्तर समिति भी इस पर विचार कर निर्णय लेगी।जिला स्तरीय समिति का निर्णय अंतिम होगा और वह अपने निर्णय के साथ क्रियान्वयन के लिए राज्य स्तरीय समिति के पास भेज देगा जो इसके क्रियान्वयन की प्रक्रिया को आगें बढ़ायेगा।

भारतीय संविधान एवं वन अधिकार–

पर्यावरण मुख्यरूप से एक राष्ट्रीय समस्या है जो गम्भीर होने पर विश्वव्यापी रूप धारण कर लेती है। इन समस्याओं से बचने के लिए प्रत्येक राष्ट्र अपने स्तर पर प्रयास करता है। भारत में पर्यावरण से सम्बन्धित लगभग 200 कानून बन चुके है। भारतीय संविधान विश्व के उन संविधानों में से एक है जिसमें पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। संविधान में पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित प्रावधान मूल अधिकारों और राज्य के निति निर्देशक तत्वों,जिन्हें संविधान की अंर्तत्माकहा गया है, के साथ- साथ मूल कर्तव्यों में भी समावेश किया गया है।स्टाक होम के सम्मेलन की पृष्टभूमि में 1976 में 42वें संशोधन के तहत भाग 4 के अंतर्गत दो अनुसूचित संसोधन किये गये है –

- अनुसूची 48 (क):राज्य, देश के पर्यावरण संरक्षण तथा संवर्धन का और वनों तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।
- अनुसूची 51(क)(छ) : भारत के नागरिक का यह कर्तव्य होगा की प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणीमात्र के प्रति दयाभाव रखे। (अधिनियम 2011 5th संस्करण)[8]

वन अधिनियम का इतिहास:-

वन अधिकार कानूनों को एक सदी पूर्व से ही जाना जा सकता है जो 1876 से 1927 तक पारित किए गए थे।अंग्रजी शासन काल व्यवस्था में 1927 का कानून भारत का केन्द्रीय वन कानून बना रहा, जबकि इस कानून का वनों के संरक्षण में कोई योगदान नहीं रहा हैं। यह तो केवल मात्र अंग्रेजी शासन व्यवस्था ने अपने उपयोग हेतू इसे गठित किया और इसका निर्वाहन किया गया था। भारत को स्वतंत्रता मिलने के पश्चात यह स्थिति और दयनीय हो गई और जब रजवाड़ों, जमीन्दारों तथा निजी मालिकों द्वारा 'वन' के रूप में घोषित जमीनों को एक सामान्य अधिसूचना जारी कर उन्हें वन विभाग को स्थानान्तरित कर दिया गया। ऐसे अधिकतर स्थानान्तरण बिना किसी बन्दोबस्ती प्रक्रिया को अपनाए गए जहाँ पूर्ववर्ती सरकार ने इन भूखण्डों पर कुछ अधिकारों को मान्यता प्रदान की अथवा उनके इस्तेमाल की इजाजत दी। इन अधिकारों की अक्सर उपेक्षा की गई और इसलिए वे स्थानान्तरण की प्रक्रिया के बाद रद्द हो गए (जैसा कि मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में जंगलों की निस्तारी के बाद देखा गया) : 1855 में लार्ड डलहौजी, जो उस समय मध्य भारत का गवर्नर था, ने एक वन नीति घोषित की थी।[9]

[8]कुमार,राजीव(2009).पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास,जयपुर:आविष्कार पब्लिशर्स पेज सं.1

[9]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.पेज सं.-193

वन–नीति का इतिहास

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल से भारत मे अंग्रेजों के लिए वन, बहुमूल्य साधन था, इसलिए अंग्रेजों ने अपने औपनिवेशिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए जनजातियों एवं अन्य समुदायों के वनाधिकारों को सीमित करने के संबंध मे निम्नलिखित अधिनियमों एवं नीतियो को लागू किया—

वन नीति 1955

1855 मे वनवासियों के अधिकारों को सीमित करने हेतु मार्गनिर्देशों वाला एक अनुबंध पत्र जारी किया गया । वन विभाग की स्थापना कर वन महानिरीक्षक की नियुक्ति की गई ताकि वनों का प्रबंधन किया जा सके एवं उनका दोहन होने से रोका जा सके । जिसकेअंतर्गत यह कहा गया कि राज्य के वन-क्षेत्र में जो भी इमारती लकड़ी के पेड़ है वे राज्य सरकार के है और उन पर किसी व्यक्ति का कोई अधिकार या दावा नही है । इस नीति को अमल में लाने के लिए एक वन विभाग की स्थापना हुई ।[10]

दि गवर्नमेंट फोरेस्ट एक्ट ,1964

सन 1864 में सरकारी वन कानून बनाकर ब्रिटिश सरकार ने वनों पर अपना अधिकार घोषित किया कि,वह किसी भी वन या कुछ भाग को 'सरकारी वन' घोषित कर सकती है ।लेकिन उसने यह घोषणा भी कि वन पर जनजातियों के परम्परागत अधिकारों की रक्षा की जाएगी ।[11]

1865 का पहला वन कानून –

1865 मे पहली बार यह घोषित किया गया कि " वन भूमि जहाँ पर वृक्ष ,झाड़ या जंगल है , उस पर किसी का भी व्यक्तिगत या सामाजिक अधिकार नहीं माना जाएगा।सरकारी वनों के संरक्षण एवं प्रबंधन के नियमों को लागू करने का आदेश जारी किया गया तथा भारतीय वन विभाग में नौकरियों के लिए पदों कि स्थापना

[10]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स-191
[11]https://india.gov.in/hi/**वन**-निपटान-नियम-**1965**?page=3

भी की गई ।इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वनों पर सरकारी नियंत्रण स्थापित करना था।फलस्वरूप जनजातियों और शासन के बीच अंर्तविरोध पैदा हुआ।

यह जंगलवासियों द्वारा जंगल की वस्तुओं कोएकत्र करने की छुट नियमित करने का पहला प्रयास था। इस प्रकार स्थानीय लोगों के सामाजिक रूप से विनियमित आचरण को कानून द्वारा प्रतिबंधित किया गया।[12]

1878 का वन –कानून -

धीरे –धीरे अंग्रेज सरकार और देशी पूंजीपतियों की जरूरतें बढने लगीं और तब उन्होंने 1878 में पुराने कानून की जगह एक नया 'भारतीय वन कानून' लागू किया। नयें कानून ने पहली बार वन को तीन भागों में बाँटा –(1) आरक्षित वन (रिजर्व फॉरेस्ट) (2) ग्रामीण वन (विलेज फॉरेस्ट) (3) संरक्षित वन (प्रोटेक्टेड फारेस्ट)। इसी वर्गीकरण के आधार पर अधिक नियंत्रण कायम किया गया। इस कानून से पहली बार सरकार के हाथ इतने लंबे हो गए की वह सिर्फ कुछ शर्तें लगाकर वन आरक्षित घोषित करके उसे जनजातियों से छीन सकती थी।[13]

1890 का वन –कानून

1890 में 'वन कानून' बना जिसके द्वारा कुछ वर्षों में परिवर्तन लाया गया ।यह वनों पर अपनी सत्ता लागु करने वाला भारत सरकार का दूसरा कदम था जिससे जंगल में प्रवेश करने,वह पशुओं को चराने आदि कई कामो पर रोक लगाई , कुछ कामो को जुर्म घोषित किया गया जिसके लिए जुर्माने और कैद की सजाएं निश्चित की गयी।[14]

[12]persmin.gov.in/Hindi_ActRules_MainMenu.asp-8 am 11/11/2016

[13]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.पेज -192

[14]envfor.nic.in/.../**वन**-संरक्षण-अधिनियम-1980-के-अंतर्गत-बनायें- गयें- दिशा निर्देश और नियम समय24/10/2016 10 pm

1894 की पहली वन-नीति

इस वन –नीति के अंतर्गत पहली बार वन –क्षेत्र का इस्तेमाल करने वालो के लिए , पहले उन्हें चाहे कितनी ही आजादी क्यों न प्राप्त हो , उनके अधिकारों , सुविधाओ और प्रतिबंधो की व्यवस्था की गयी और उन्हें इस तर्क पर न्यायसंगत ठहराया गया कि उनसे जनता को होने वाला लाभ बहुत ज्यादा है और आधारभूत सिद्धांत यह है कि व्यक्ति के अधिकार सीमित होने चाहिए। 1894 में पहली बार वन –अधिकारी गम्भीरता के साथ सामने आये और उन्होंने जनजातियों के अधिकारों को नियमित और सीमित करने के लिए सत्ता का इस्तेमाल किया।[15]

भारतीय वन अधिनियम 1927

ब्रिटिश सरकार ने 1927 में एक वृहद वन कानून की घोषणा की। लेकिन वनों का त्रिकोटी वर्गीकरण (आरक्षित,ग्रामीण,और संरक्षित वन) वैसे का वैसा रखा गयाजहाँ तक सरकारी नियंत्रण का सवाल है ,आरक्षित वन तो पूरी तरह से सरकारी वन ही होते थे, जिनमें जनजातियों को बसाना, हटाना या उनके अधिकारों को बदलना कुछ भी सरकार कर सकती थी लेकिन संरक्षित वनों में ऐसा नही थाऐसे वन के अधिकार लिखित रूप में होते थे और सरकार इन अधिकारों को अपनी मन-मर्जी से बदल नहीं सकती थी।[16]

1927 के तहत इस कानून में पांच महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गए थे। इन परिवर्तन से आरक्षित वनों पर सरकारी नियंत्रण और भी कड़ा हो गयाऔर वनों के अंदर रहने वाली जनजातियों और गैर जनजातियों को एक खास समय के अंदर अपना हिसाब किताब चुकता करने के लिए कह दिया गया।अब सरकार ने सिर्फ

[15]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.-पेज संख्या-193

[16]haryanaforest.gov.in/hindi/IndianForestAct1927.aspx

सरकारी वन की इमारती लकड़ी पर नही बल्कि किसी भी वन की किसी भी लकड़ी पर उसकीसूचि भी लंबी हो गयी[17]। उपर से यह प्रावधान भी रख दिया गया कि इन कामों के लिये दोषी ठहरायें जाने पर कोई सुनवाई न होगी और 500 रु जुर्माना या छ: महीने जेल या जुर्माना दोनों हो सकता हैं। वन काटकर या जला कर खेती करने की प्रथा पर प्रतिबंध लगाने या उसे ख़त्म करने का अधिकार भी राज्य सरकार को दे दिया गया। सबसे खास बात तो यह थी की इस कानून से वनों में रहनें वाली जातियों के 'सामुदायिक अधिकारों 'की चर्चा ख़त्म कर दी गयी और उनकी जगह 'व्यक्तियों के अधिकारों और विशेषाधिकारों'की चर्चा की गयी। यह अधिनियम वन –भूमि और वन उत्पादन पर जनता के अधिकारों को विनियमित करने का प्रयास था। इसके अंतर्गत जंगलो पर राजकीय नियंत्रण बढ़ाने के उद्देश्य से विस्तृत नियम –कायदों की व्यवस्था की गयी। वन सम्बन्धी कानूनों को तोडना जुर्म के लिए यथोचित दण्ड की व्यवस्था की गयी। वन अधिनियम के अंतर्गत अत्यधिक शक्तिशाली और संरक्षित कार्यपालिका की व्यवस्था की गयी जिसमे भारतीय और राजकीय वन- सेवा के अधिकारी , रेंजर्स –फारेस्टर्स और वनों के चौकीदार आदि शामिल किये गए।वन अधिनियम में प्रशासको को ऐसे कानून बनाने का अधिकार भी दिया गया जो स्थायी प्रकृति के ना हो। इन अफसरों को कई क़ानूनी अधिकार भी प्राप्त थे।[18]

दि फारेस्ट ऑफ इंडियन एक्ट ,1935

1935 में ब्रिटिश संसद द्वारा पारित गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट के तहत प्रान्तों मे विधानसभाएँ बनी और वन का विषय प्रांतीय सूची में शामिल कर दिया गया। उसके बाद अनेक प्रांतो मे वन भूमि एवं वनोंपज पर जनजातियों के अधिकारो से संबन्धित अपने-अपने कानून बनायें गए।[19]

[17]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.-192

[18]http://haryanaforest.gov.in/hindi/IndianForestAct1927.aspxdate14/11/2016 12 am

[19]श्रीवास्तव, ए.आर.एन.(2007). *जनजातीय भारत के साठ वर्ष* .भोपाल:मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी-63

राष्ट्रीय वन- नीति 1952

स्वतंत्रता के बाद सन् 1952 मे भारत सरकार अपनी राष्ट्रीय वन नीति बनाई।इस नीति मे पुराने नीति की बहुत सी बातें बरकरार रखी गई। 1952 की नीति तय होने से पहले दूसरे महायुद्ध के दौरान युद्ध और सुरक्षा की जरूरतों को पूरा करने के लिए वनों के महत्व को देश के शासन वर्ग ने अच्छी तरह समझा था। स्वतन्त्र भारत की सरकार ने कहा की उसकी नयी नीति के बुनयादी सिद्धांत अब भीवही है जो 1894 की वन –नीति के थे। 1952 की वन नीति में जो बातें नई जोड़ी गई है वे इस प्रकार हैं। इस नीति को "6 स्थायी जरूरतों" के आधार पर बनाया गया।[20]

1. जमीन के उपयोग का एक संतुलित तरीका निकालने की जरूरत (अर्थात कितना वन काटा जाए,कितना लगाया,जाए और कितने पर खेती की जाए)
2. मिट्टी के कटाव और बाढ़ों को रोकने की जरूरत ,
3. कटे हुये वन की जगह और उसके अलावा नए वन उगाने की जरूरत ,
4. किसानों की जरूरत ,जैसे चारागाह, खेती और औजार और घर बनाने के लिए तथा जलावन के लिए लकड़ी,
5. सुरक्षा, संचार और उद्योगों के लिए इमारती लकड़ी और वन की दूसरी पैदावार लगातार जुटाने की जरूरत और
6. अधिक सालाना राजस्व जुटाने की जरूरत।

---

[20]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

1952 की वन नीति का घेबर आयोग द्वारा मूल्याकन

राष्ट्रपति ने सविधान के अनुच्छेद -339 क्रं. के अंतर्गत 1960 में श्री यू. एन. घेबर की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया गया था। जिसका उद्देश्य वन – नीति और जनजाति वर्ग का अध्ययन करना था। आयोग ने यह महसूस किया की जनजाति के लोगो को, जो उस समय तक अपने आपको जंगल का राजा समझते थे उनको वन विभाग की अधीन बना दिया गया है। जनजातियों के परम्परागत अधिकारों को अब उनके अधिकारों के रूप में नहीं माना जाता 1894 में जो "अधिकार और सुविधाए" थी, 1952 में वे "अधिकार और रियायते" बना दी गई और अब उन्हें केवल "रियायतो" तक ही सीमित कर दिया गया।

आयोग ने यह भी बताया कि वन –विभाग के अधिकारी अब जंगलो की पैदावार पर जनजातीयों के अधिकार से भी मुकर गये हैं।[21]

वन अधिनियम 1966

सन 1966 में वन विभाग कि सेवाओं में श्रेणीबद्ध विस्तार हुआ जिसके अंतर्गत वनों से धीरे- धीरे राजस्व बढ़ाने के प्रस्ताव रखे गये। फलस्वरूप जनसामान्य के प्रति वन प्रशासन का रवैया कठोर होता गया।

[21]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.-190

वन्यप्राणी संरक्षण अधिनिय ,1972

देश मे वन्य प्राणियों के संरक्षण के उद्देश्य से पारित इस अधिनियम मे शिकार पर पूर्णत: प्रतिबंध लगाया गया।इस अधिनियम ने वन्य प्राणी संरक्षित क्षेत्र-राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्य का आरंभ किया, जिससे इन संरक्षित क्षेत्रों मे वनों पर निर्भर जनजातीय समुदाय वन संसाधनों का उपभोग एवं शिकार करने के अधिकारी नहीं रह गए। इस प्रकार प्रभावित जनजातीय समुदायों का जीवनयापन कष्टप्रद हो गया।

एन . सी. ए. – संस्तुतियां और जनजातियो के अधिकार 1976

1976 में संविधान के 42वें संशोधन द्वारा वनों का विषय समवर्ती सूची में शामिल किया गया जिससे उसके बारे में कानून बनाने का अधिकार केंद्र को प्राप्त हुआ।राष्ट्रीय कृषि आयोग ने 1976 में वनों को तीन वर्गो में विभाजित किया-संरक्षित वन ,उत्पादित वन और सामाजिक वन। आयोग कि अनुशंसा पर 'सामाजिक वानिकी' कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। सामाजिक वानिकी, ग्रामीणों की मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति और उन्हे रोजगार उपलब्ध करने पर केन्द्रित थी, लेकिन यह कार्यक्रम कई रूपों से निर्धन ग्रामीण /जनजातीय लोगों को सशक्त बनाने के बजाए उद्धोगपतियों के लिए अधिक लाभप्रद साबित हुआ। [22]

भारतीय वन कानून ,1980

'राष्ट्रीय कृषि आयोग' के सुझावों के आधार पर केंद्रीय वन मण्डल ने 1980 मे एक नए वन कानून के मसौदे का नया रूप तय किया। इसे विभिन्न राज्य सरकारों को टिप्पणी के लिए भेजा गया। केंद्रीय वन मण्डल द्वारा तैयार किए हुए इस मसौदे मे 143 अनुच्छेद विभिन्न 15 अध्याय हैं। इसमें वन की परिभाषाएं दी गई- "कोई भी जमीन जिसे सरकार वन घोषित कर दे ।"1981 के आरंभिक महीनों मे इसे संसद मे

[22]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.-191

प्रस्तुत किए जाने वाला था किन्तु तत्कालीन विशाल जनमत ने इस मसौदे का विरोध किया। लोगों की प्रतिक्रियाएँ इतनी तीव्र और उग्र थीं कि 1985-86 तक यह संसद मे प्रस्तुत न हो सका। यह कहना गलत न होगा की 1980-85 के दौरान भारत की जागरूक जनता, वनों का महत्व क्या है यह जानने लगी थी। सरकार की ओर से कई विशेष कमिटियाँ गठित की गई जिससे महत्वपूर्ण तथ्यों कापतालग सके। जनजातीय क्षेत्रों को कठोर "वन नीति" से बचाने के लिए तीन ऐसी कमेटियों का उल्लेख किया जा सकता है। ये थीं –

1. पिछड़ें क्षेत्रों के विकास के लिए राष्ट्रीय कमिटी (1980)
2. वन और जनजातीय कमिटी (यह कमिटी प्रसिद्ध मानवशास्त्री बी.के.रायबर्मन के संरक्षण मे गठित हुई थी 1982)
3. भारत वन क्षेत्रों मे अधिकार और छुट कमिटी (1981)

वन अधिनियम अधिकार 1885:- FRA के तहतजो लोग जंगल में रहे है। तीन पीढियों से उन्हें स्वतंत्रता है,की वे वही निवास व जमीन प्रयोग में ला रहे है।उनको जमीन संबंधी पट्टा प्रदान किया गया है।[23]

नयी राष्ट्रीय वन –नीति 1987-88 और जनजातियो के अधिकार

उपरोक्त कमिटियों के निष्कर्षों के आधार पर पर्यावरण मंत्रालय (1984 तक वन विभाग 'कृषि मंत्रालय'में सम्मलित था। 1985 वर्ष से यह पर्यावरण मंत्रालय के अधीनस्त है।) के विशेषज्ञों ने 1987 मे एक नया ड्राफ़्ट तैयार किया ताकि आने वाले वर्षों मे कोई कानून बन सके।

1988 मे डीएसएसएच के कई स्थानों से केंद्र सरकार को ग्रामीण जनजातियों द्वारा स्वयं आगे आकर अपने आस-पास के वनों का संरक्षण –संवर्धन हेतु वन सुरक्षा समूह के गठन कि सूचना प्राप्त हुई। अत : इन संदर्भो के आधार पर वर्षो से देश मे घटती वनों की स्थिति की समीक्षा करते हुये भविष्य मे वनों की सुरक्षा

[23]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.-495

एवं विकासप्रदान करने की दृष्टि से भारत सरकार ने नवीन राष्ट्रीय वन नीति , 1988 घोषितकी।इसमें कहा गया कि वन नीति का प्रमुख उद्देश्य पर्यावरण स्थायित्व और परिस्थितिकीय संतुलन मे रखरखाव को सुनिश्चित करना होना चाहिए जिसमें वायुमंडलीय संतुलन भी शामिल है, जो सजीव रूपों मे मानव पशु और पौधों के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है।इस ड्राफ्ट की मूल बातें निम्न हैं –

1. पर्यावरण को संतुलन रखना विशेष कर उन क्षेत्रों मे जहां असंतुलन की प्रक्रिया शुरू हो गई है ।
2. प्राकृतिक संपदा को बनाए रखना। जहां प्राकृतिक वन है, उन्हे नष्ट होने से बचाना ।
3. मिट्टी के कटाव को रोकना, वनों की आवश्यक कटाई न करना।
4. वन रोपण कार्यक्रम और सामाजिक वानिकी को बढ़ाना ।
5. जलावन की लकड़ी, चारा तथा वन वस्तुओं को जनजातियों तथा ग्रामीण लोगों को उपलब्ध करना ।
6. वन उत्पादकता मे वृद्धि करना ,
7. वन का सही उपभोग करना ,
8. उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जनमानस तैयार करना ।[24]

स्पष्ट है कि इस नीति में राजस्व कमाने से अधिक प्राथमिकता पर्यावरण स्थायित्व को दी गई साथ ही जनजातीय/ग्रामीण समुदायों की आवश्यकताओं की पूर्ति को सर्वोपरी माना गया। इस वन नीति का सबसे उल्लेखनीय पहलू यह है कि इसमें वनों पर परंपरागत अधिकार को मान्य करते हुये वन प्रबंधन मे इसकी सहभागिता के महत्व को स्वीकार किया गया, जो अब तक की वन नीतियों से इसे एक अलग विशेषता प्रदान करता है।

[24]हसनैन, नदीम.(2005).*जनजातीय भारत.नई दिल्ली*: जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.-190

केंद्रीय परिपत्र 1990 : संयुक्त वन प्रबंधन :

वन नीति, 1988 के अनुपालन में केंद्र सरकार ने वन प्रबंधन में जन सहयोग प्राप्त करते के लिए जून ,1990 में सभी राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों को एक परिपत्र जारी किया, जिसमें संयुक्त वन प्रबंधन की अवधारणा की घोषणा और इसके क्रियान्वयन संबंधी विस्तृत दिशा निर्देश दिये गए हैं। परिपत्र के अनुसार वन प्रबंधन मे स्थानीय /ग्रामीण जनजातीय समुदायों की संस्थागत रूप से सुनिश्चित सहभागिता हेतु ग्राम स्तर पर संयुक्त वन प्रबंधन समितियों (ग्राम सुरक्षा समिति /ग्राम वन समिति) का गठन हुआ तथा वनों को पुन: हरा-भरा बनाने के लिए कार्य कर रहें ग्रामीण संगठनो को निर्धारित वन क्षेत्र से होने वाली आय में हिस्सा दिया जाना चाहिए। इस परिपत्र में विशेष रूप से कहा गया कि संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम मे गैर सरकारी संगठनो की अर्थपूर्ण भूमिका ली जानी चाहिए, क्योंकि ग्रामीण जनजातीय समुदायों को संगठित करने में उन्हें दक्षता हासिल होती है। केंद्र सरकार के इस परिपत्र के अनुसार राज्यों ने समय-समय पर वन संरक्षण में जनसहयोग एवं सहभागिता संबंधी संकल्प जारी कर संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम का सूत्रपात किया। फरवरी, 2000 में केंद्र सरकार ने संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम को सुदृढीकरण प्रदान करने की दिशा में एक सर्कुलर जारी किया, जिसमें संयुक्त वन प्रबंधन समितियों /स्वप्रेरित समूहों को वैधानिक आधार प्रदान करने, महिलाओं की भागीदारी, कार्यक्रम विस्तार, सूक्ष्म प्रबंध योजना निर्माण, मदभेद निवारण, संसाधन पुर्ननिर्माण तथा निगरानी एवं मूल्यांकन के संदर्भ में निर्देश दिया गया है।

उपरोक्त मूल्यांकन से ज्ञात होता है की ब्रिटिश एवं स्वतंत्र भारत में वन प्रबंधन रणनीतियों का झुकाव प्रमुखत: सामाजिक न्याय एवं स्थायित्व की अपेक्षा वाणिज्कीय और आद्यौगिक दोहन के पक्ष में रहा। राष्ट्रीय वन नीति, 1988 के अनुरूप 'संयुक्त वन प्रबंधन' देश की वन नीति में आए अवधारणात्मक परिवर्तन को प्रतिबिम्बित करता है। संयुक्त वन प्रबंधन की अवधारणा सम्पूर्ण पर्यावरणीय दशाओं मे सुधार करते हुए सामान्यजनों को उनकी विकासीय आवश्यकताओं के साथ स्थानीय वन प्रबंधन व्यावहार को

समन्वित करने हेतु सामर्थ्यवान बना सकती है। तथापि इस सिद्धांत को नहीं बदलता कि वनों तक पहुँच अंतिम रूप से सरकार के दया धर्म पर ही निर्भर करती है।

छत्तीसगढ़ राज्य की वन नीति,2001:

छत्तीसगढ़ राज्य ने राष्ट्रीय वन नीति 1988 के समानान्तर वन नीति – 2001 घोषित की है। राज्य की वन नीति को संचालित करने वाले मूल उद्देश्यों में वनों को राजस्व लाभ का स्त्रोत ना मानकर उनका संरक्षण-संवर्धन कर पर्यावरणीय स्थायित्व एवं परिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखना , जैविक रूप से संपन्न प्राकृतिक वन जो जनजातीय जीवन के प्रमुख सांस्कृतिक आधार है, इस चीज को ध्यान मे रखते हुये ग्रामीण /जनजातीय समुदायों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना शामिल है। राज्य की वन नीति में जनजातीय समुदायों और वन के संदर्भ में उल्लेखित है कि-

जनजातियों एवं वनों के बीच प्रगाड़ सहजीवी संबंध को ध्यान में रखते हुए ऐसी समस्त एजेंसियों को जो वन प्रबंधन के लिए जिम्मेदार हैं, जनजतियों को वनों के संरक्षण, वनों का नवीनीकरण, और विकास मे सहभागी बनाना चाहिए। साथ ही वनों में उनके आसपास निवासरत जनजातीय लोगों को निम्न बिन्दुओं पर लाभप्रद रोजगार प्रदान किया जाना चाहिए।[25]

- लघु वनोंपजों का स्थानीय लोगों विशेषकर जनजातियों के सहयोजन के साथ संरक्षण, नवीनीकरण एवं बिना किसी क्षति के उनकी फसल लेना तथा ऐसी वनोंपजों के विपणन के लिए संस्थात्मक तंत्र की व्यवस्था करना।
- वन ग्रामों को राजस्व ग्रामों में परिवर्तित करना।

[25]https://hi.wikipedia.org/s/17ge(2016)Retrived on April 09,

- जनजातियों के आर्थिक स्तर के सुधार के लिए सामुदायिक आधार पर योजनाएँ संचालित करना । एकीकृत क्षेत्र विकास कार्यक्रमों को मात्र इसलिए लेना कि वनांचलों तथा उसके आसपास रहने वाले जनजातियों कि आर्थिक –आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकें उनसे वनों पर दबाव भी कम हो सकें।

वन नीति में वन प्रबंधन और जनजातीय कल्याण एवं विकास के संबंध में अन्य महत्वपूर्ण बातें निम्नानुसार कही गई है –

- स्थानीय ग्रामीण/ जनजातीय समुदायों के क्षमताओं का उपयोग संयुक्त वन प्रबंधन कार्यकर्म मे सुनियोजित रूप से किया जाना चाहिए। सभी संयुक्त वन प्रबंधन समितियों जैसे ग्राम वन समिति एवं वन सुरक्षा समिति मे भूमिहीन, सीमान्त कृषक एवं महिलाओं की सूचित भागीदारी एवं निर्णय लेने के सभी स्तरों पर अवसर सुनिश्चित करने हेतु विशिष्ट प्रावधान किया जाए। इन समितियों को अधिक सक्षम बनाने के लिए उन्हें और अधिकार एवं प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
- राज्य में संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम को सुदृढ़ करने हेतु जनजतियों के वन आधारित आर्थिक कार्यक्रमों में विस्तार किया जाना चाहिए , और उन्हेंवित्तीय संस्थाओं से प्राप्त होने वाले आर्थिक सहयोग किया जाना चाहिए।
- जंनजातियों एवं अन्य निर्धन व्यक्तियों का सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन वनो के इर्द-गिर्द केंन्द्रित है। इन समुदायों की मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति प्राथमिकता के आधार पर जैव विविधता संरक्षण को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।
- राज्य में किसी भी बाहरी प्रजाति को शासकीय अथवा अशासकीय माध्यम से नहीं अपनाया जाए, जब तक परिस्थितिकीय, वानिकी, समाजशास्त्र एवं कृषि क्षेत्र के विशेषज्ञों के दीर्घगामी वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सुस्पष्ट हो जाए किउक्त प्रजाति राज्य के लिए उपयोगी है तथा इसका

यहाँ के देशज वनस्पति, परिस्थितिकीय एवं जैव–सांस्कृतिक परिवेश पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।

- राज्य के समृद्ध जनजातीय सांस्कृतिक एवं रीति –रिवाजों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि वे अपने विशिष्ट व्यापी संबंधो द्वारा स्वयं एवं वनों को लाभ पंहुचा सकें ।संरक्षित क्षेत्रों में विद्यमान भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्यों का प्रबंधन जैव –सांस्कृतिक संरक्षण के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए।
- ग्रामीणों विशेषकर जनजातियों के वन औषधियों परंपरा एवं बौद्धिक संपदा अधिकार का सद्भावना पूर्वक संरक्षण किया जाना चाहियें। अन्य लघु वनोपज जनजातियों की आजीविका की प्रमुख स्त्रोत हैं। यथा संभव कच्चेमाल के रूप में लघुवनोंपजों का स्थानीय स्तर पर ही प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन प्रोंत्साहित किया जाना चाहिए।
- क्षेत्र के परिस्थितिकीय और सामाजिक-संस्कृतिक परिवेश का अध्ययन किए बिना कुटीर एवं ग्रामीण स्तर के उद्धोगों को छोडकर भविष्य में किसी भी वन आधारित उद्धोगों को अनुमति नहीं दिया जाना चाहिए।
- उद्धोगों के लिए भूमि का आबंटन भूमि परिसीमन और राज्य के अन्य भू–नियमों के अंतगर्त किया जाना चाहिए। इन उद्धोगों को किसी प्रकार से जनजातियों और अन्य समुदायों के सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं पर विपरीत प्रभाव डालने की छुट नहीं दिया जाना चाहिए।
- राज्य के संरक्षित क्षेत्रों में परिस्थितिकीय विकास एवं स्थानीय जन सहयोग के माध्यम से जैविक दबाव का प्रबंधन किया जाना चाहिए।राष्ट्रीय उद्धयानों, अभ्यारणोएवं जिन संरक्षण केन्द्रों को स्थापित करने में यदि जनजातीय समुदायों को विस्थापित किया जाता है तो उन्हें ऐसे उचित स्थल पर बसाया जाए, जिससे बसाहट उपरांत उनके जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार परिलक्षित हों।

- परिस्थितिकीय पर्यटन जैसे गतिविधियों को ग्रामीण/जनजातीय समुदायों के आर्थिक विकास प्रणाली के रूप में भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- मानव संसाधन विकास की रणनीति में स्थानीय लोगों विशेषकर ग्रामों में गठित संयुक्त वन प्रबंधन समितियों की क्षमता विकास को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि नवादित छत्तीसगढ़ राज्य में वन नीति के माध्यम से वन प्रबंधन को एक जनोंन्मुखी दिशा देने में ठोस पहल की गई है। नीति में वन संसाधन के निरंतर एवं टिकाऊ प्रबंधन से पर्यावरणीय स्थायित्व और जनजातीय समाज एवं अन्य निर्धन वर्गों की सुरक्षा के सुदृढीकरण की परिकल्पना की गई है।

- **अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पारम्परिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006**

अनुसूचित जनजाति तथा दुसरे परम्परागत वन निवासियों के हक़ के लिए भारत सरकार ने एक कानून बनाया है । इसका नाम अनुसूचित जनजाति एवं परम्परागत वन जन (वन निवासियों की मान्यता) अधिनियम, 2006 है। वन अधिकार अधिनियम 2006, वन सम्बन्धी नियमों का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है जो 18 दिसम्बर 2006 को पास हुआ। यह अधिनियम अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य परंपरागत वनवासियों के वनधिकारों को मान्यता एवं समर्थकता प्रदान करता है। परंपरागत वनवासी जो ऐसे वन क्षेत्रों मे थीं पीढ़ियों से निवास करते आए हैं जहाँ उनके अधिकारों को अभिलेखित नहीं किया जा सका है,को दस्तावेजीकरण हेतु यह अधिनियमों का एक ढांचा प्रदान करता है।वनवासी अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य परंपरागत वनवासियों को मान्य अधिकारों में वनोंत्पादों के सतत उपयोग, जैवविविधता संरक्षण एवं पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखने का उत्तरदायित्व शामिल है तथा इस उद्देश्य से वनवासियों कि आजीविका एवं खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करते हुए वनों के संरक्षण पद्धति को सुदृढ़ करना है।

अधिनियम मानता है कि वनवासियों के उनके पूर्वजों की भूमि पर अधिकार एवं उनके परंपरागत पर्यावरण को औपनिवेशिक काल के दौरान साथ ही स्वतंत्र भारत में भी पर्याप्त मान्य नहीं किया गया ।परिणामत: अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य परंपरागत वनवासी जो वन परिस्थितिकीय तंत्र के अभिन्न अंग है, उनके

साथ ऐतिहासिक रूप से अन्याय हुआ हैं।अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वनवासी (वन अधिकारों को मान्यता) अधिनियम, 2006 का पारित किया जाना जनजातीय संघर्षो के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है ।सरकार ने पहली बार औपचारिक रूप से माना है कि एक लंबे समय तक वन समुदायों के अधिकारों का हनन हुआ हैं तथा यह अधिनियम न केवल ऐतिहासिक अन्याय को दुरुस्त करने की कोशिश करता है, बल्कि वन प्रबंधन में वनवासी समुदायों की भूमिका को एक अहम स्थान भी देता है।[26]

इस कानून के मुख्य प्रावधान निम्न है।

यह कानून अपने आप में अनूठा है, इसके द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति होगी :

- वन क्षेत्र के परम्परागत वनवासियों के अधिकारों को क़ानूनी मान्यता देना ।
- वनों के संरक्षण की व्यवस्था को मजबूत करना।
- वन क्षेत्र के निवासियों की आजीविका तथा खाद्य सुरक्षा का सशक्तिकरण करना।

वन अधिकार अधिनियम(2006), वन सम्बन्धी नियमों का एक महवपूर्ण दस्तावेज है जो 18 दिसम्बर 2006 को पारित हुआ। यह कानून जंगलों में निवास कर रहें लोगो के भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार से जुडा हुआ हैं जिन्हें औपनिवेशिक काल से ही वंचित रखा गया हैं। वन अधिकार अधिनियम 2006 का उद्देश्य जंगलों में रहने वाले लोगों को उनके साथ सदियों तक हुए अन्याय से मुक्ति दिलाने का प्रयास है, साथ ही वनों की रक्षा(संरक्षण) करना भी इसका उद्देश्य है। अनुसूचित जनजातियों और अन्य परम्परागत वन निवासी जो ऐसे वनों में तीन पीढियों से निवास कर रहे है, किन्तु उनके अधिकारों को अभिलिखित नही किया जा सका है, ऐसे आदिवासियोंके वन अधिकारों एवं वन भूमि में अधिभोग को मान्यता देने और निहित करने के उद्देश्य से अधिनियम पारितहुआ है।यह वन अधिनियम वन क्षेत्रों में तथा ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वित है। इसके तहत ग्राम वन समिति बनाई गई हैं ग्राम वन समिति का गठन ग्राम वन

[26]http://nstfdc.nic.in/hindi/page/?pid=90 1-12-2016